वैश्विक परिदृश्य में हिंदी

डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० बालक राम भद्री
डॉ० संगीता वर्मा

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी
डॉ० ओकेन्द्र, डॉ० बालक राम भद्री,

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी

सम्पादक
डॉ० ओकेन्द्र
डॉ० बालक राम भद्री
डॉ० संगीता वर्मा

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स
वी-508, गली नं.17, विजय पार्क,
दिल्ली-110053
मो. 08527460252, 09990236819
ईमेल: jtspublications@gmail.com

जे.टी.एस. पब्लिकेशन्स, दिल्ली

वैश्विक परिदृश्य में हिंदी

सम्पादक
डॉ० ओकेन्द्र, डॉ० बालक राम भद्री, डॉ० संगीता वर्मा

वैधानिक चेतावनी

पुस्तक के किसी भी अंश के प्रकाशन- फोटोकॉपी, इलेक्ट्रॉनिक माध्यमों में उपयोग के लिए लेखक/ संपादक/ प्रकाशक की लिखित अनुमति आवश्यक है। पुस्तक में प्रकाशित शोध-पत्रों में निहित विचार तथा संदर्भों का संपूर्ण दायित्व स्वयं लेखकों का है। संपादक/ प्रकाशक इसके लिए उत्तरदायी नहीं है ।

© सर्वाधिकार सुरक्षित

प्रथम संस्करण : २०२३
ISBN 978-93-95669-19-1

प्रकाशक
जे०टी०एस० पब्लिकेशन्स
वी-५०८, गली नं०१७, विजय पार्क, दिल्ली-११००५३
दूरभाष : ०८५२७ ४६०२५२, ०११-२२६११२२३
E-Mail : jtspublications@gmail.com
मूल्य : ६६५.०० रूपये

आवरण : प्रतिभा शर्मा, दिल्ली
मुद्रक : तरूण ऑफसेट प्रिंटर्स, दिल्ली

Vaishvik Paridrashay Main Hindi by
Dr. Okendra, Dr. Balak Ram Bhadri, Dr. Sangita Verma

अनुक्रमणिका

प्राक्कथन : हिंदी का वैश्विक परिदृश्य : हिंदी भाषा और साहित्य का वैश्विक स्वरूप ५

१. वैश्विक स्तर पर हिंदी के बढ़ते कदम १६
डॉ० घनश्याम भारती

२. हिंदी का वैश्विक परिदृश्य और संवेदनहीनता २३
डॉ० संगीता वर्मा

३. वैश्विक परिदृश्य में हमारी हिंदी ३०
डॉ० मेहता नगेन्द्र सिंह

४. हिंदी भाषा का वैश्विक प्रभाव ३५
डॉ० विजय नारायण दुबे

५. वैश्विक परिदृश्य में हिंदी ३६
डॉ० ओकेन्द्र, डॉ० (सुश्री) राणी बापू लोखंडे

६. वैश्विक परिदृश्य में हिंदी भाषा के बढ़ते कदम ७१
किशोरी लाल

७. वैश्विक स्तर पर हिंदी की भूमिका ८१
डॉ० व्यंकट अमृतराव खंदकुरे

८. हिंदी भाषा और उसके शब्द भण्डार का विकास ८६
डॉ० शोभना कोक्काड़न

९. विश्व में हिंदी और हिंदी सम्मेलन ९६
हुस्नआरा. एन. धारवाड़

१०. वैश्विक परिदृश्य पर हिंदी १०७
प्रो. के. मुरारी दास

११. देश की एकता का सूत्र : हमारी हिंदी १२०
डॉ० शिव कुमार व्यास

१२. हिंदी भाषा का वैश्विक एकता पर मनोवैज्ञानिक प्रभाव १२४
डॉ० आशा कुमारी, डॉ० राजेश

१३. प्रवासी साहित्य में हिन्दी : डॉ. सुरेश चन्द्र शुक्ल 'शरद आलोक' के विशेष संदर्भ में १३९
जयवीर सिंह

८

हिंदी भाषा और उसके शब्द भण्डार का विकास

–डॉ॰ शोभना कोक्काड़न

भारत सामाजिक, संस्कृतिक, आर्थिक तथा राजनैतिक दृष्टि से एक विकासशील देश है। भाषा विकास और सामाजिक विकास अन्योन्याश्रित है। अथवा भाषा और समाज का इतना घनिष्ठ संबंध है कि एक को दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। भाषा ही मनुष्य के सामाजिक प्राणी होने का सबसे बड़ा प्रमाण है और इसी भाषा की सहायता से ही समाज बनता है। भाषा का विकास सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है और इसीलिए यह बताया जाता है कि भाषा समाज सापेक्ष होती है। समाज के अभाव में भाषा की कल्पना नहीं की जा सकती।

हिन्दी भारतीय आर्य भाषाओं में एक है। अन्य भारतीय आर्य भाषाएँ पंजाबी, गुजराती, मराठी, पहाड़ी भाषाएँ, उडिया बंगाली आसामी आदी है। एक ही परिवार से विकसित होने के कारण, शब्द भंडार की दृष्टि से इनमें बहुत कुछ समानता है। ध्वनि और अर्थ की दृष्टि से अनेक अंतर भी है। भारतीय आर्य भाषाएँ बारोपीय भाषा परिवार का एक अंग है, जिसका विस्तार भारत की पूर्वी सीमा से लेकर यूरोप की पश्चिमी सीमा तक है। इसलिए हिन्दी में प्रयुक्त बहुत से शब्दों के समान रूप एशिया और यूरोप के विभिन्न भागों की भाषाओं में मिल सकते है।

हिन्दी भाषा का क्रमिक विकास वैदिक आर्य भाषाओं से शुरू होता है। प्राचीन भारतीय आर्यभाषाओं का प्राचीनतम प्राप्य रूप है वैदिक संस्कृत। ऋग्वेद की भाषा ई.पू 1500 और उसके पूर्व की मानी जाती

Professor & Head, Dept-of Hindi Avinashilingam Institute for Home Science and Higher Education for Women (Deemed to be University) Coimbatore 641043

है। ऋग्वेद की भाषा भी एकरूपी नहीं है। उसमें भाषा के अनेक रूप मिलते हैं, जिससे अनुमान किया जा सकता है कि ऋग्वेद विविध कालोंमें, विविविध प्रदेशों में, विविध व्यक्तियों द्वारा लिखित ऋचाओं की संहिता है।

प्राचीन भारतीय आर्यभाषा– वैदिक भाषा के विविध स्वरूपों का विकास होता रहा और लौकिक एवं साहित्यिक संस्कृत के विविध रूप प्रयोग में आए। इन भाषाओं का काल ई पू 1500 से ई पू 500 तक है।[1] विविध भाषाओं में क्रमशः कुछ एकरूपता आती रही और उसका साहित्यक रूप विकसित हुआ। लगभग ई पू तीसरी शताब्दी में पाणिनी ने उत्तरी भाषाओं के आधार पर भाषा के परिनिष्ठित रूप का निर्णय किया और उसका व्याकरण लिखा। इसी भाषा को साहित्यिक संस्कृत या संस्कृत माना जाता है। पाणिनी द्वारा प्रस्तुत व्याकरण का महत्व इतना है कि वह आज तक सर्वमान्य रहा है और साहित्यिक संस्कृत का रूप भी व्याकरण की दृष्टि से वहुत कुछ अपरिवर्तित रहा है। इस तरह परिंष्ठित होने पर, इस परिनिष्ठित रूप का वोलचाल में प्रयोग कम होकर धीरे धीरे वंद हो गया । इस तरह भाषा का विकास अवरुद्ध हो गया। केवल विद्वानों द्वारा गंभीर विचार प्रकट करने की लिए उसका प्रयोग किया गया। लेकिन इस मानकीकरण से यह लाभ हुआ कि विविध गंभीर विषयों की चर्चा के लिए उपयुक्त माध्यम मिल गया और पिछले दो हजार वर्षों में दर्शन वैधक (आयुर्वेद) साहित्य आदि विषयों में लिखित ग्रंथ भी पठनीय रहते हैं। यहीं नहीं परिनिष्ठित रूप रचना होने के कारण आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओं के शव्द भंडार का विकास करने के लिए इसी भाषा का आश्रय भी लिया जा सकता है। यह भी उल्लेखनीय है हिन्दी और नया भारतीय भाषाओं के लिए ही नहीं, तमिल के अतिरिक्त अन्य द्रविड़ भापाओं के लिए भी दृवैज्ञानिक एवं तकनीकी शव्दों के लिए सर्वाधिक उपयोगी स्रोत संस्कृत शब्द भंडार है।

मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाएँ– जैसे परिनिष्ठित संस्कृत भाषा का रूप निश्चित हो गया और उसके उपयोग का क्षेत्र सीमित हो गया तव भी लोक भाषा के विभिन्न रूपों का प्रयोग होता रहा। लगभग ई. पू

इस काल की भाषाओं को समग्र रूप में मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषा कहा जाता है।

पालि– यह मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं की प्रथम अवस्था समझी जाती है। ध्वनि और रूप दोनों की दृष्टियों से पालि वैदिक भाषा के अधिक निकट है और इसके बहुत से विकसित रूप भी पाये जाते हैं। पालि भाषा का आद्यंत एक रूप या स्थिर रूप नहीं रहा है और निरंतर विकसित होती रही। इस भाषा में तद्भव शब्दों का प्रभाव अधिक हुआ है और विदेशी शब्दों का बहुत कम।[2]

शब्द भंडार की दृष्टि से देखा जाय तो पालि में ध्वनि परिवतनों के कारण अनेक संस्कृत शब्दों का रूपांतर हो गया। ध्वनि समीकरण ,स्वरागम, व्यंजन लोप आदि ध्वनि प्रक्रियाओं के कारण सभी क्लिष्ट' या संयुक्त व्यंजनवाले शब्दों का सरलीकरण हो गया। पर संस्कृ त के वे शब्द उसमें सुरक्षित रहे, जो स्वयं सरल थे, और जिनमें ध्वनि परिवर्तन की संभावना नहीं थी। जैसे : कर, कुसुम, दल आदि। इसके परिणाम स्वरूप पालि के शब्द भंडार में अधिकांश शब्द संस्कृत शब्दों के तदभवों के रूप में और कुछ शब्द तत्सम रूप में मिलते हैं। गिरनार, जौगड़ा, मानसेहरा, आदि स्थानों से अशोक के जो शिलालेख मिले हैं, उनकी भाषाओं में एकरूपता नहीं है और इन शिला लेखों में दो से अधिक बोलियाँ है।[3]

प्राकृत– मध्यकालीन भारतीय आर्य भाषाओं का प्रथम शती से पाँचवीं शती तक का दूसरा काल विशेष महत्व रहता है। इस काल में प्राकृत भाषाओं का बोलवाला रहा। संस्कृत के सीमित हो जाने के बाद जो जन भाषाएँ साहित्य में प्रतिष्ठित हुई उनका नाम प्राकृत पड़ा। अनेक विद्वानों ने आग्नेय तथा द्राविद भाषाओं का मूल भी प्राकृत विशेष से माना है और कुल छ्ब्बीस प्राकृतों का उल्लेख भी किया है। परंतु वास्तव में साहित्यिक तथा व्याकरणिक दृष्टि से पाँच प्राकृतों को ही मान्यता प्राप्त हुई। ये हैं– शौरसेनी, मागधी, अर्ध मागधी, महाराष्ट्री और पैशाची। बौद्ध और जैन धर्म के साहित्य प्राकृत में ही लिखा गया है। प्राकृत के कवि और लेखक वे ही थे जिनका संस्कृत पर अच्छा

अधिकार था। इनमें से कुछ तो दोनों भाषाओं में समानान्तर रचनाएँ भी करते थे। इस तरह उनके पढ़ने और सोचने की भाषा तो संस्कृत थी और अभिव्यक्ति की भाषा के रूप में उन्होने प्राकृतों को स्वीकृत किया था जो उस काल की जन भाषा थी। प्राकृत में भी ध्वनि परिवर्तनों के कारण बहुत से संस्कृत शब्द रूपांतरित हो गए और प्रासंगिक बात यह है कि संस्कृत के तत्सम शब्द इसमें बहुत कम रहे।[4]

अपभ्रंश– लोकभाषा या जनपदीय भाषाओं के रूप में प्रचलित प्रकृतों से विकसित रूप हैं विविध अपभ्रंश। समस्त आधुनिक आर्य भाषाओं का विकास इन्हीं अपभ्रंशों से हुआ है।

शौरसेनी– पश्चिमी हिन्दी , राजस्थानी, पहाड़ी, गुजराती
पैशाची– पंजाबी, लहंदा
ब्राचड़– सिन्धी
मागधी– बिहारी, बंगला, उडिया, असमिया
अर्ध मागधी– पूर्वी हिन्दी

तद्भव और देशज शब्दों की बहुलता के साथ साथ नए शब्दों का निर्माण होने लगा। मुसलमानी शासन के कारण शब्द भंडार में विदेशी शब्दों का मिश्रण भी होने लगा। प्राकृत और अपभ्रंश काल की भाषा में संस्कृत के बहुत से शब्दों में रूप परिवर्तन हो गए थे। पर जिन शब्दों में ध्वनियाँ अत्यंत सरल है और परिवर्तन की गुंजाइश कम थी, ऐसे शब्द तत्सम रूप में रह गए। सरल शब्दों में भी कभी कभी तनिक परिवर्तन हो गए जैसे– पाप–पापु, अपरिवर्तित शब्दों की संख्या बहुत कम है।

अपभ्रंश भाषा के साहित्य में तद्भव और तत्सम संस्कृत शब्दों के अतिरिक्त अन्य भाषाओं के (अरबी–फारसी) के शब्द नहीं के बराबर है। इस काल के बाद में ही मुसलमानी शासन के कारण अरबी फारसी का प्रभाव मध्यकालीन आर्य भाषाओं पर पड़ा और उनके शब्द धीरे धीरे आने लगे।

शब्द। इस तरह हम कह सकते है कि भक्तिकालीन साहित्य में विविध जन भाषाओं और बोलियों के शब्द भंडार के साथ साथ अनेक संस्कृत तत्सम शब्द और कुछ सीमित संखामें अरबी फारसी के शब्द मिलते हैं।

रीतिकाल में भी काव्य की भाषा मुख्यतः व्रज और अवधी रही। इन भाषाओं के अपने शब्द भंडारों को ही काव्य रचना में अधिक प्रयुक्त किया गया। विरासत में प्राप्त संस्कृत शब्द तो थे ही लेकिन भक्ति एवं दर्शन संबंधी विषय भक्तिसाहित्य के समान संस्कृत शब्द रीति साहित्य में नहीं हैं। दरबारी वातावरण में विकसित होने के कारण कुछ कवियों की रचनाओं में अरबी फारसी शब्द भी मिल सकते हैं।

आधुनिक काल– हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 1850 के बाद परिस्थितियाँ बहुत कुछ भिन्न हो गयी जिसका प्रभाव भाषा एवं साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। अङ्ग्रेजी शाके स्वरूप सन तथा भारतीय धार्मिक सुधारकों के कार्यों से राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में नयी चेतना आयी। पाश्चात्य संपर्क के कारण जीवन दृष्टि अधिक व्यापक हो गई, शिक्षा का अधिक प्रसार हुआ, और विविध विषयों का अध्ययन होने लगा। इस दशा में भाषा कुछ उच्च वर्गों तक सीमित काव्य मात्र का माध्यम नहीं रह सकती थी उसे जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों के विविध कार्यों में भी सम्प्रेषण माध्यम का दायित्व उठाना पड़ा। अब तक काव्य मात्र के लिए प्रयुक्त भाषा को छोड़कर नए दायित्वों की पूर्ति करनेवाली एक भाषा के स्वरूप का निर्णय आवश्यक हो गया। इसके फलस्वरूप हिन्दी में खड़ीबोली और गद्य शैली का तीव्र प्रसार होने लगा। यद्यपि प्रारम्भ में खड़ी बोली व्रज भाषा के बीच में एक को चुनने में बहुत अधिक मतभेद था तो भी अपनी संरचनात्मक विशेषताओं के तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलने की क्षमताओं के कारण खड़ी बोली का निरंतर विकास हुआ और उनकी प्रतिष्ठा हुई। खड़ी बोली हिन्दी के इस तीव्र विकास के कुछ प्रमुख कारण ये रहे :–

- ❖ अंग्रेजों ने भारतियों से विचार विनिमय के लिए इसी भाषा को मुख्य माध्यम के रूप में विकसित किया।

- ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए इसी भाषा को माध्यम बनाया। ईसा के उपदेशों का इसी भाषा में अनुवाद कराया और प्रकाशित करवाकर वितरित किया।
- स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदोक्त वैदिक–धर्म के प्रचार प्रसार के लिए इसी भाषा को अपनाकर उसमें अपने ग्रंथ लिखे, तथा आर्य समाज और स्वामीजी की दें भी हिन्दी भाषा के लिए बहुत अधिक ऐतिहासिक महत्व रखती है।
- लल्लुजी लाल, सदल मिश्र,इनशा अललखाम एवं सदासुखलाल के योगदान के पश्चात राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने इसके विकास को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने काव्य की भाषा तो व्रज भाषा को ही रखने का आग्रह किया और गद्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रयोग पर बल दिया। 1900 ई. तक खड़ीबोली मुख्यतः गद्य की भाषा रही, और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों से इसी काल में खड़ी बोली पद्य की भाषा भी बनी। आज यही खड़ीबोली हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित है और विद्यमान है।

हिन्दी का शब्द समूह– शब्द समूह की दृष्टि से हिन्दी के शब्दों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है दृतत्सम,तद्भव, देशज और विदेशी।

तत्सम :– तत्सम शब्द उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान ही अथवा संस्कृत जैसे हो।[6] जैसे हिन्दी में दृ कृष्ण, कर्म, गृह, हस्त, धर्म। अधिकांश तत्सम शब्द संस्कृत से सीधे ग्रहण किए गए हैं। इनमें से कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो हजारों वर्षों की विकास यात्रा में अपरिवर्तित रहे हैं जैसे– जल, नदी, फल, देव, पति, गुरु आदि और कुछ ऐसे भी हैं जो प्राकृत ,अपभ्रंश आदि भाषाओं से गुजरते हुए नहीं आए अपितु सीधे संस्कृत से ग्रहाण कर लिए गए हैं जसे दृ मुख, वृक्ष, पुस्तक, अग्नि आदि। इसी कारण दूसरे वर्ग के शब्दों के तत्सम और तद्भव दोनों रूप मिलते है। ऐसे भी बहुत से तत्सम शब्द हैं, जो प्राकृत तथा

शब्द। इस तरह हम कह सकते है कि भक्तिकालीन साहित्य में विविध जन भाषाओं और बोलियों के शब्द भंडार के साथ साथ अनेक संस्कृत तत्सम शब्द और कुछ सीमित संखामें अरबी फारसी के शब्द मिलते हैं।

रीतिकाल में भी काव्य की भाषा मुख्यतः व्रज और अवधी रही। इन भाषाओं के अपने शब्द भंडारों को ही काव्य रचना में अधिक प्रयुक्त किया गया। विरासत में प्राप्त संस्कृत शब्द तो थे ही लेकिन भक्ति एवं दर्शन संबंधी विषय भक्तिसाहित्य के समान संस्कृत शब्द रीति साहित्य में नहीं हैं। दरबारी वातावरण में विकसित होने के कारण कुछ कवियों की रचनाओं में अरबी फारसी शब्द भी मिल सकते हैं।

आधुनिक काल– हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल में 1850 के बाद परिस्थितियाँ बहुत कुछ भिन्न हो गयी जिसका प्रभाव भाषा एवं साहित्य पर पड़ना अनिवार्य था। अङ्ग्रेजी शाके स्वरूप सन तथा भारतीय धार्मिक सुधारकों के कार्यों से राजनैतिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में नयी चेतना आयी। पाश्चात्य संपर्क के कारण जीवन दृष्टि अधिक व्यापक हो गई, शिक्षा का अधिक प्रसार हुआ, और विविध विषयों का अध्ययन होने लगा। इस दशा में भाषा कुछ उच्च वर्गों तक सीमित काव्य मात्र का माध्यम नहीं रह सकती थी उसे जीवन के भिन्न भिन्न क्षेत्रों के विविध कार्यों में भी सम्प्रेषण माध्यम का दायित्व उठाना पड़ा। अब तक काव्य मात्र के लिए प्रयुक्त भाषा को छोड़कर नए दायित्वों की पूर्ति करनेवाली एक भाषा के स्वरूप का निर्णय आवश्यक हो गया। इसके फलस्वरूप हिन्दी में खड़ीबोली और गद्य शैली का तीव्र प्रसार होने लगा। यद्यपि प्रारम्भ में खड़ी बोली व्रज भाषा के बीच में एक को चुनने में बहुत अधिक मतभेद था तो भी अपनी संरचनात्मक विशेषताओं के तथा परिस्थितियों के अनुसार बदलने की क्षमताओं के कारण खड़ी बोली का निरंतर विकास हुआ और उनकी प्रतिष्ठा हुई। खड़ी बोली हिन्दी के इस तीव्र विकास के कुछ प्रमुख कारण ये रहे :–

- अंग्रेजों ने भारतियों से विचार विनिमय के लिए इसी भाषा को मुख्य माध्यम के रूप में विकसित किया।

- ईसाई मिशनरियों ने अपने धर्म प्रचार के लिए इसी भाषा को माध्यम बनाया। ईसा के उपदेशों का इसी भाषा में अनुवाद कराया और प्रकाशित करवाकर वितरित किया।
- स्वामी दयानंद सरस्वती ने वेदोक्त वैदिक–धर्म के प्रचार प्रसार के लिए इसी भाषा को अपनाकर उसमें अपने ग्रंथ लिखे, तथा आर्य समाज और स्वामीजी की दें भी हिन्दी भाषा के लिए बहुत अधिक ऐतिहासिक महत्व रखती है।
- लल्लुजी लाल, सदल मिश्र,इनशा अललखाम एवं सदासुखलाल के योगदान के पश्चात राजा शिवप्रसाद सितारे हिन्द तथा राजा लक्ष्मण सिंह ने इसके विकास को आगे बढ़ाया। भारतेन्दु हरिश्चंद्र ने काव्य की भाषा तो व्रज भाषा को ही रखने का आग्रह किया और गद्य की भाषा के रूप में खड़ीबोली के प्रयोग पर बल दिया। 1900 ई. तक खड़ीबोली मुख्यतः गद्य की भाषा रही, और आचार्य महावीर प्रसाद द्विवेदी के अथक प्रयासों से इसी काल में खड़ी बोली पद्य की भाषा भी बनी। आज यही खड़ीबोली हिन्दी के रूप में प्रतिष्ठित है और विद्यमान है।

हिन्दी का शब्द समूह– शब्द समूह की दृष्टि से हिन्दी के शब्दों को चार वर्गों में विभाजित किया जा सकता है दृतत्सम,तद्भव, देशज और विदेशी।

तत्सम :– तत्सम शब्द उन शब्दों को कहते हैं जो संस्कृत के समान ही अथवा संस्कृत जैसे हो।[6] जैसे हिन्दी में दृ कृष्ण, कर्म, गृह, हस्त, धर्म। अधिकांश तत्सम शब्द संस्कृत से सीधे ग्रहण किए गए हैं। इनमें से कुछ शब्द तो ऐसे हैं जो हजारों वर्षों की विकास यात्रा में अपरिवर्तित रहे हैं जैसे– जल, नदी, फल, देव, पति, गुरु आदि और कुछ ऐसे भी हैं जो प्राकृत ,अपभ्रंश आदि भाषाओं से गुजरते हुए नहीं आए अपितु सीधे संस्कृत से ग्रहाण कर लिए गए हैं जसे दृ मुख, वृक्ष, पुस्तक, अग्नि आदि। इसी कारण दूसरे वर्ग के शब्दों के तत्सम और तद्भव दोनों रूप मिलते है। ऐसे भी बहुत से तत्सम शब्द हैं, जो प्राकृत तथा